वेदोंकी रचना किसने की ?

(शास्त्रार्थ-पञ्चानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

'वेदोंका आविर्भाव कब हुआ ?' इस प्रश्नकी भाँति 'वेदोंकी रचना किसने की ?' यह जिज्ञासा भी पाश्चात्त्य एवं पौरस्त्य सभी वेदानुसंधाताओंको अनादि-कालसे आकुल किये हुए है। भारतीय दार्शनिक भी वेदोंके अनिर्वचनीय माहात्म्यके सम्मुख जहाँ एकमतसे नतमस्तक हैं, वहीं उनके कर्तृत्वके विषयमें पर्याप्त विवादग्रस्त दिखायी पड़ते हैं। पाश्चात्त्य वेदज्ञोंने तो ईसासे ५ से ६ हजार वर्ष पूर्वकी रचना मानकर उनकी पौरुषेयताका स्पष्ट प्रतिपादन कर दिया है। उनका अभिप्राय है कि जिस प्रकार रामायण, महाभारत, रघुवंश आदि लौकिक संस्कृत-ग्रन्थ वाल्मीकि, व्यास एवं कालिदास आदिके द्वारा प्रणीत हैं, उसी प्रकार वेदोंकी काठक, कौथुम, तैत्तिरीय आदि शाखाएँ भी कठ आदि ऋषियोंद्वारा रचित हैं। इसलिये पुरुषकर्तृक होनेके कारण वेद पौरुषेय एवं अनित्य हैं।

कुछ विद्वान् वेदोंका पौरुषेय होना दूसरे प्रकारसे सिद्ध करते हैं। उनका कहना है कि वेदोंमें यत्र-तत्र विशेषकर नाराशंसी गाथाओंके अन्तर्गत ऐतिहासिक सम्राटों एवं व्यक्तियोंके नाम आते हैं। जैसे—

बबरः प्रावाहणिरकामयत (तै०सं० ७। १। १०। २)

कुसुरुबिन्द औद्दालकिरकामयत (तै०सं० ७। २। २। २)

—इत्यादि प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि बबर, कुसुरुबिन्द आदि ऐतिहासिक व्यक्तियोंके बाद ही वेदोंका निर्माण हुआ होगा। उससे पूर्व वेदोंकी सत्ताका प्रश्न ही नहीं होता। इस प्रकार वेदोंमें इतिहास स्वीकार करनेवालोंकी दृष्टिमें भी वेद पौरुषेय हैं।

—इस सम्बन्धमें एक तीसरी विचारधारा और भी है। इस विचारधाराके विद्वानोंका कथन है कि वेदोंमें कई परस्पर असम्बद्ध एवं तथ्यहीन वाक्य उपलब्ध होते हैं। उदाहरणके लिये निम्न वाक्य देखे जा सकते हैं—

(क) **वनस्पतयः सत्रमासत।**

(ख) **सर्पाः सत्रमासत।**

(ग) **गवां मण्डूका ददत शतानि।**

—इन वाक्योंमें वर्णित जड वनस्पतियोंद्वारा एवं चेतन होते हुए भी ज्ञानहीन सर्प, मण्डूक प्रभृति जीवोंद्वारा यज्ञानुष्ठान किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? इसलिये उक्त वाक्य उन्मत्तके प्रलापकी भाँति जिस-किसीके द्वारा रचे गये हैं। अतः वेद नित्य अथवा अपौरुषेय कथमपि नहीं हो सकते।

इस विषयमें भारतीय दर्शनशास्त्रोंने जो विचार किया, वह बहुत ही क्रमबद्ध और सोपपत्तिक है। उन विश्लेषणोंकी छायामें देखें तो उपर्युक्त तर्क बहुत ही सारहीन एवं तथ्यहीन प्रतीत होते हैं।

पूर्वमीमांसामें महर्षि जैमिनिने '**वेदांश्चैके संनिकर्षं पुरुषाख्या**' और '**अनित्यदर्शनाच्च**' (जैमिनिसूत्र १। १। २७-२८)—इन दो सूत्रोंके अन्तर्गत वेदोंको अनित्य तथा पौरुषेय माननेवालोंके तर्कका उपस्थापन करके फिर एक-एकका युक्तिप्रमाण-पुरस्सर खण्डन किया है। रामायण, महाभारतकी भाँति काठक, तैत्तिरीय आदि वेदशाखाओंको भी मनुष्यकृत माननेवालोंके लिये जैमिनि ऋषि कहते हैं कि वेदोंकी जिन शाखाओंके साथ ऋषियोंका नाम सम्बद्ध है, वह उन शाखाओंके कर्तृत्वके कारण नहीं; अपितु प्रवचनके कारण हैं—'**आख्या प्रवचनात्**' (जैमिनिसूत्र १। १। ३०)। प्रवचनका तात्पर्य है कि उन ऋषियोंने उन मन्त्र-संहिताओंका उपदेश किया था, प्रणयन नहीं। इसलिये मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेके कारण विश्वामित्र प्रभृतियोंको 'ऋषि' कहा जाता है, मन्त्रोंका 'निर्माता' नहीं। निरुक्तकार यास्कने भी '**साक्षात् कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः ॥**' '**ऋषिर्दर्शनात्**' (निरुक्त १। ६। २०; २। ३। १२)—ऐसा कहकर उक्त अर्थकी उपादेयता स्वीकार की है।

वेदोंमें इतिहास माननेवालोंके सम्बन्धमें जैमिनिका कहना है कि तैत्तिरीयसंहितामें जो बबर, कुसुरुबिन्द आदि नाम उपलब्ध होते हैं, वे सब ऐतिहासिक व्यक्तियोंके ही हों; यह आवश्यक नहीं है। वहाँ बबर नामक किसी पुरुषविशेषका वर्णन नहीं है, अपितु ब-ब-र ध्वनि करनेवाले प्रवहणशील वायुका ही यहाँ निर्देश है। इसी प्रकार अन्य भी जो शब्द हैं, वे सब शब्दसामान्यमात्र ही समझने चाहिये—'**परं तु श्रुतिसामान्यम्**' (जैमिनिसूत्र १। १। ३१)।

परंतु वेदोंमें 'इतिहासका सर्वथा अभाव है', जैमिनिकी

यह स्थापना यास्क आदि पुरातन वेद-व्याख्याताओंके मतसे विरुद्ध है। यास्क वेदोंमें इतिहास स्वीकार करते हैं। '**कुशिकस्य सूनुः**' (ऋक्० ३। ३३। ५)-की व्याख्या करते हुए यास्क स्पष्ट कहते हैं—'**कुशिको राजा बभूव**' (नि०अ० २, खं० २५)। किंतु वेदोंमें इतिहास स्वीकार करते हुए भी यास्क वेदोंको पौरुषेय अथवा अनित्य नहीं मानते। उनका अभिप्राय है कि वेदोंमें तत्तत् ऐतिहासिक व्यक्तियोंके होनेके कारण वेदोंको उनके बादकी वस्तु नहीं कहा जा सकता। वेदोंका ज्ञान त्रिकालाबाधित है। कर-बदरके समान भूत-भव्य-भविष्य—तीनों कालोंके सूक्ष्म वर्णनकी शक्ति है। अतः लौकिक दृष्टिसे भविष्यमें होनेवाले व्यक्तियोंके वर्णन वेदोंकी नित्यता अथवा अपौरुषेयताके विरुद्ध नहीं है। व्यास-सूत्रोंमें वेदव्यासजीने भी यही पक्ष स्थापित किया है कि वेदोंमें आये ऐतिहासिक पुरावृत्त-सम्बन्धी पदोंको भावी अर्थका ज्ञापक समझना चाहिये। '**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।**' '**वनस्पतयः सत्रमासत**'—इत्यादि वाक्योंको उन्मत्त-वाक्योंकी भाँति अनर्थक और मनुष्यकर्तृक बतलानेवालोंके लिये मीमांसाका उत्तर है कि उक्त वाक्य उन्मत्त-प्रलापकी तरह अर्थहीन नहीं हैं, अपितु उनमें अर्थवाद होनेके कारण यज्ञकी प्रशंसामें तात्पर्य है। वहाँ केवल इतना ही अभीप्सित अर्थ है कि जब जड वनस्पति और अज्ञानी सर्प भी यज्ञ करते हैं, तब चेतन, ज्ञानवान् ब्राह्मणोंको तो यज्ञ करना ही चाहिये।

यज्ञ-प्रशंसापरक इन वाक्योंको मनुष्यकर्तृक भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यदि ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंके विधायक वाक्योंको मनुष्यनिर्मित मान भी लिया जाय तो भी '**ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत**'—इत्यादि वाक्योंमें ज्योतिष्टोम यज्ञको स्वर्ग-साधन-स्वरूपमें जो वर्णित किया है, यह विनियोग किसी मनुष्यद्वारा निर्मित नहीं हो सकता अर्थात् तत्तत् यज्ञोंसे तत्तत् फल होते हैं—यह साध्य-साधन-प्रक्रिया किसी साधारण पुरुषके द्वारा ज्ञात नहीं हो सकती। इसलिये वनस्पत्यादि सत्र-वाक्य भी ज्योतिष्टोमादि-विधायक वाक्योंके समान ही हैं—

'**कृते वा नियोगः स्यात् कर्मणः सम्बन्धात्**' (जैमिनिसूत्र १। १। ३२)। अतः ये सभी वेद-वाक्य पुरुषकर्तृक न होनेके कारण अपौरुषेय ही हैं।

उत्तरमीमांसामें व्यासजीने भी वेदोंको नित्य तथा अपौरुषेय बताया है। वस्तुतः है भी यही बात।

वेदोंकी शाश्वतवाणी नित्य एवं अपौरुषेय है। उसके प्रणयनमें साक्षात् परमेश्वर भी कारण नहीं हैं, जहाँ श्रुति '**वाचा विरूप नित्यया**' (ऋक्० ८। ७५। ६) कहकर अपनी नित्यताका स्वयं उद्घोष करती है, वहीं स्मृतियाँ भी '**अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा**' कहकर वेदोंके नित्यत्वका प्रतिपादन करती हैं। जिस प्रकार साधारण प्राणोंको भी श्वास-प्रश्वास-क्रियामें किसी विशेष प्रयत्नका आश्रय नहीं लेना पड़ता, जैसे निद्राके समय भी श्वास-क्रिया स्वाभाविक रूपसे स्वतः सम्पन्न होती रहती है; उसी प्रकार वेद भी उस महान् भूतके निःश्वासभूत हैं—**अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।** (बृहदारण्यक० ४। ५। ११)

महाप्रलयके बाद तिरोभूत हुए वेदोंको क्रान्तदर्शी ऋषि अपने उदात्त तपोबलसे पुनः साक्षात्कार करके प्रकट कर देते हैं—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा॥

पूर्व-पुण्यके द्वारा जब मनुष्य वेद-ग्रहणकी योग्यता प्राप्त करते हैं, तब ऋषियोंमें प्रविष्ट उस दिव्य वेद-वाणीको वे खोज पाते हैं—

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
(ऋक्० १०। ७१। ३)

—इस मन्त्रमें पहलेसे ही विद्यमान वेदवाणीका ऋषियोंमें प्रविष्ट होना तथा उसका मनुष्योंद्वारा पुनः ढूँढ़ पाना वर्णित है। अतः वेद नित्य हैं। प्रलयके समय भी उनका विनाश नहीं होता, प्रत्युत तिरोधानमात्र होता है।

वेद अपौरुषेय हैं। दृष्टके समान अदृष्ट वस्तुमें भी बुद्धिपूर्वक निर्माण होनेपर ही पौरुषेयता होती है—'**यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम्**' (सा० सूत्र ५। ५०), परंतु महाभूतके निःश्वास-रूप वेद तो अदृष्टवश स्वतः आविर्भूत होते हैं, उनमें बुद्धिपूर्वकता नहीं होती। अतः वेद किसी पुरुषद्वारा रचित कदापि नहीं हो सकते।

मीमांसकोंने शब्दकी नित्यता बताते हुए नित्य एवं स्वतःप्रमाण कहकर उनकी अपौरुषेयता सिद्ध की थी, परंतु उनके शब्द-नित्यत्वको नैयायिकोंने प्रबल तर्कोंसे खण्डित कर दिया है। नैयायिक शब्दको नित्य नहीं अनित्य

मानते हैं। तब क्या वेद भी अनित्य हैं? नहीं, वेद तो नित्य ही हैं। नैयायिक कहते हैं कि शब्दकी नित्यताके कारण वेद तो नित्य नहीं हैं; अपितु नित्य, सर्वज्ञ परमेश्वरद्वारा प्रणीत होनेके कारण नित्य हैं।

आजके वैज्ञानिकोंने न्यायविदोंके शब्दकी अनित्यता-सम्बन्धी तर्कोंको निराधार सिद्ध कर दिखाया है और मीमांसकोंके मतको अर्थात् शब्दकी नित्यताको प्रमाणित किया है। आजका भौतिक विज्ञान भी कहता है कि उच्चरित होनेके बाद शब्द नष्ट नहीं होता, अपितु वायुमण्डलमें बिखर जाता है। वैज्ञानिक यन्त्रोंके सहारे उसे पुनः प्रकट किया जा सकता है। रेडियो, टेलीफोन आदि यन्त्रोंने उनके इस कथनको प्रत्यक्ष भी कर दिखाया है।

आजका विज्ञान तो यहाँतक दावा करता है कि भविष्यमें इस प्रकारके यन्त्रोंका आविष्कार हो जानेपर वायुमण्डलमें तैरते उन शब्दोंको भी पकड़ना सम्भव हो सकेगा, जिन शब्दोंमें भगवान् श्रीकृष्णने आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्जुनको गीताका उपदेश दिया था। वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि वे शब्द विनष्ट कदापि नहीं हुए हैं, अपितु वायुमण्डलमें कहीं दूर निकल गये हैं। शान्त जलमें कंकड़ फेंकनेपर जैसे लहरोंका क्रम परिधियाँ बनाता चलता है, उसी प्रकार वायुमण्डलमें भी शब्द-लहरियाँ बनती हैं। अभिप्राय यह है कि आजके विज्ञानके अनुसार भी शब्द नित्य होता है। ऐसी स्थितिमें मीमांसकोंका जो अभिमत है कि नित्य-शब्दोंका समुदाय होनेके कारण वेद भी नित्य हैं और नित्य होनेके कारण अपौरुषेय भी हैं। वे विज्ञानमूलक होनेके कारण सुतरां प्रमाण-संगत ही हैं।

उपर्युक्त विवेचनका मथितार्थ यही है कि सभी भारतीय दार्शनिकोंने एकमतसे वेदोंको स्वतः आविर्भूत होनेवाला नित्य-अपौरुषेय पदार्थ माना है। नैयायिक भी नित्य-सर्वज्ञ-पुरुष-परमेश्वरद्वारा प्रणीत होनेके कारण पौरुषेय कहते हैं; किसी साधारण पुरुषद्वारा निर्मित होनेके कारण नहीं। अपने तपः-पूत हृदयोंमें क्रान्तदर्शी महर्षियोंने अपनी विलक्षण मेधाके बलपर वेदोंका दर्शन किया था। उस दिव्य शाश्वत वेदवाणीमें लोकोत्तर निनादका श्रवण किया था। तथ्य यह है कि वेद अपौरुषेय हैं, नित्य हैं, भारतीय दर्शनों एवं वेदानुरागियोंका यही अभिमत और यही शाश्वत सत्य भी है।

वेद कथाङ्क (कल्याण-विशेषांक)